डॉ0 अम्बेडकर : सामाजिक न्याय एवं दर्शन

आधुनिक युग में सामाजिक न्याय की स्थापना के लिये देश में जिन लोगों ने कार्य किया उनमें डॉ0 भीमराव अम्बेडकर अग्रणी है। एक न्यायपूर्ण समाज की रचना के लिये उन्होंने जो कार्य किये उनके उल्लेख के बिना भारत में सामाजिक न्याय की चर्चा कभी पूरी नहीं हो सकती। यद्यपि उन्हें अर्थशास्त्री, लेखक, प्रखर वक्ता, समाज वैज्ञानिक, संविधान-विज्ञ, शिक्षाशास्त्री, समाजसुधारक, राजनीतिज्ञ एवं कुशल प्रशासक आदि अनेक रूपों में जाना जाता है तथापि उनकी सही पहचान सामाजिक न्याय पर आधारित आधुनिक भारत में निर्माता के रूप में ही हो सकती है।

सामाजिक न्याय सम्बन्धी डॉ0 अम्बेडकर के योगदान को निम्न तीन खंडों में विभक्त कर समझने में हमें आसानी होगी।

1. सामाजिक अन्याय की पहचान और उसके कारणों का वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक अनुशीलन।
2. सामाजिक न्याय पर आधारित विधान की रचना और उसे प्रभावी बनाने की दृष्टि से संविधान मे स्वतंत्र न्याय पालिका का प्रावधान।
3. सामाजिक न्याय की स्थापना के लिये आंदोलन एवं संघ।

सामाजिक अन्याय के कारणों की खोज

डॉ0 अम्बेडकर (1987 : 25) स्वतंत्रता, समानता एवं भातृत्व को सामाजिक न्याय का पर्याय मानते थे। समाज में जब इन तत्वों का अभाव होता है तो अन्याय की स्थिति उत्पन्न होती है।

अम्बेडकर के अनुसार नारी, शूद्र एवं दलित सहित भारतीय समाज का अधिकांश भाग सामाजिक अन्याय का शिकार था। ये समाज के वे वर्ग थे जो न केवल सामाजिक एवं नागरिक अधिकारों से वंचित थे अपितु विभिन्न प्रकार की निर्योग्यताओं से पीड़ित भी थे। इनमें अस्पृश्यता के चलते दलितों की स्थिति सबसे खराब थी। वे पशु से भी गये बीते थे। इसके विपरीत द्विजों को

Scanned by CamScanner

समाज में विशेषाधिकार प्राप्त था किन्तु इनमें भी अधिकारों एंव सुविधाओं का वितरण न्यायपूर्ण नहीं था। ब्राह्मणों को सर्वाधिक अधिकार प्राप्त थे और उनकी स्थिति समाज में सबसे अच्छी थी। क्षत्रियों को उनसे कम अधिकार प्राप्त थे और उनकी स्थिति दूसरे क्रम पर थी। वैश्यों को इन दोनों वर्णों से कम अधिकार मिले थे और उनकी समाज में स्थिति तीसरे क्रम पर थी। अधिकार व सुविधाओं का यह विभाजन जन्मानुसार पूर्व निश्चित व अपरिवर्तनीय था।

अपने अध्ययनों के आधार पर डॉ0 अम्बेडकर ने परम्परात्मक हिन्दू समाज व्यवस्था को अन्यायपूर्ण निरूपित कियां यह दर्शाने के लिये एक तरह समाज की रचना करने वाले आधारभूत नियमों व आचार संहिताओं विशेषरूप से मनु के हिन्दू विधान, जिसे दैवी कानून मानते हैं, को उन्होंने जांच का आधार बनाया तो दूसरी तरफ व्यवस्था के आधारभूत तत्त्व–वर्ण एवं जाति को परीक्षण का मुद्दा बनाया और यह पाया कि हिन्दू समाज व्यवस्था और हिन्दू विधान दोनों ही सामाजिक न्याय की कसौटियों–स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर खरे नहीं उतरते।

अम्बेडकर के अनुसार उपनिषदों में सामाजिक न्याय के तत्त्व विद्यमान हैं किन्तु उपनिषदीय सिद्धांत हिन्दू विज्ञान के अंग हैं न कि हिन्दू धर्म के– क्योंकि यदि ऐसा होता तो हिन्दुओं का सामाजिक आचरण भी उसी के अनुरूप होता; जबकि ऐसा नहीं है।

असमानता, डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार, हिन्दू समाज का बुनियादी सिद्धांत है। हिन्दू धर्म, चिंतन एवं कार्य व्यवस्था की रचना असमानता के सिद्धांत पर ही हुई है। यह हिन्दू समाज और धर्म की आत्मा है। उदाहरण के लिये वर्ण एवं जाति जन्मजात अपरिवर्तनीय असमानता के द्योतक हैं। हिन्दू समाज में विभिन्न वर्णों एवं जातियों के बीच असमानता का सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध स्थायी है। यह वर्णों एवं जातियों के बीच अधिकारों एवं सुविधाओं में भेद करता है और उनकी सामाजिक स्थितियों में अन्तर उत्पन्न करता है। विवाह, दासता, सम्पति, स्वामित्व एवं दण्ड सम्बन्धी मनु के समस्त कानून भेदभावपूर्ण है। उपर्युक्त सभी विषयों में ब्राह्मणों को विशेष रियायतें हैं। साामजिक सोपान में जैसे–जैसे हम नीचे की ओर बढ़ते हैं रियायतें घटती जाती है और शूद्रों तक पहुँचते–पहुँचते ये नियम बहुत कठोर हो जाते हैं। चतुर्वर्ण के बाहर होने के कारण अन्त्यजों की स्थिति तो दास से भी गई बीती है।

अम्बेडकर (1987) की दृष्टि में मनु यदि केवल सामाजिक असमानता के कानून ही बनाते तो समस्या शायद उतनी गंभीर नहीं होती और न ही वे हिन्दू समाज के पतन के लिये सर्वाधिक उत्तरदायी ठहराये जाते। मनु का सबसे

Scanned by CamScanner

बड़ा दोष यह था कि उन्होंने सामाजिक, असमानता के साथ धार्मिक असमानता के भी कानून बनाये। ऐसा करने के पीछे मनु का निहित वर्गीय स्वार्थ था क्योंकि धार्मिक समानता के सिद्धांत को स्वीकार करने से वर्गीय असमानता का त्याग स्वतः हो जाता है। ईश्वर के सम्मुख एक शूद्र अथवा एक चाण्डाल यदि एक ब्राह्मण के समान हो जाता है तो पृथ्वी पर ब्राह्मण के समान होने से उसे दुनिया की कोई ताकत रोक नहीं सकती।

जीवन को चार समान स्तरों में विभक्त कर सुनियोजित ढंग से विकसित करने और उसे सामाजिक दायित्वों से जोड़ने की दृष्टि से आश्रम योजना बड़ी ही आकषर्ण और अच्छी लगती है किन्तु अम्बेडकर के अनुसार यह एक बाह्य एवं सतही विचार है। आंतरिक व सूक्ष्म रूप से विश्लेषण करने पर इसमें कई गंभीर दोष दिखाई देते हैं। आश्रम विधान का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह न्यायपूर्ण विधान नहीं है। आश्रम धर्म के सिद्धांत का प्रतिपादन ब्राह्मणों द्वारा समाज में अपने एवं घनिष्ठ सहयोगी वर्णों के वर्चस्व को बनाये रखने की दृष्टि से किया गया है। यह एक सोचा–समझा, चालाकीभरा और दुष्टतापूर्ण विधान सर्वथा वंचित कर दिया। आश्रम–विधान भेदभावपूर्ण तो है ही यह कठोर भी है जिस पत्नी ने जीवन भर पति का साथ दिया, उसे परमेश्वर मान कर उसकी सेवा की, वृद्धावस्था में उसे पुत्रों व परिजनों के सहारे छोड़कर सार्वजनिक कल्याण और मोक्ष की तलाश में घर का परित्याग करना अम्बेडकर की दृष्टि में पलायनवाद के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

सामाजिक न्याय के लिये दूसरी आवश्यक शर्ते है स्वतंत्रा का होना अर्थात् मूलभूत विषयों में व्यक्ति स्वतंत्र हो। उस पर समाज, राज्य या अन्य किसी व्यक्ति या वर्ग का कोई बंधन न हो। स्वतंत्रता लोगों के कार्यव्यवहार का स्वाभाविक अंग बन सके इसके लिये कुछ पूर्व–दशाओं का होनाआवश्यक है। अम्बेडकर (1987 : 10) के अनुसार स्वतंत्रता के लिये आवश्यक पहली अनुकूल दशा है सामाजिक समानता। किसी सामज में नागरिकों को प्रदत्त अधिकारों एवं सुविधाओं में जितनी समानता होगी उतना ही अपने जीवन में वे स्वतंत्रता का प्रभावी ढंग से उपभोग कर सकेंगे। हिन्दू समाज में विभिन्न वर्गो के बीच सुविधाओं और अधिकारों के वितरण में समानता का स्पष्ट अभाव है। इसलिये इसमें स्वतंत्रता का भी अभाव है।

स्वतंत्रता के लिये दूसरी आवश्यक दशा है आर्थिक सुरक्षा, जिसकी भी हिन्दू समाज में बहुत कमी है। हिन्दू समाज व्यक्ति को इच्छानुसार व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता नहीं देता। मनु ने भिन्न वर्णों के लिये भिन्न व्यवसाय निर्धारित किये। शूद्रों का कर्तव्य उच्च वर्णों की सेवा करना था। उनके लिये

Scanned by CamScanner